RNI : 66866/97

विश्व दीप दिव्य सन्देश

(मासिक शोध पत्रिका)

संरक्षक : सार्वभौम जगतगुरु, महामण्डलेश्वर परमहंस योगीराज श्री स्वामी महेश्वरानन्द जी

वर्ष–23 विक्रम संवत् – 2076 (अगस्त–2019) अंक–3

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

RNI : 66866897

विश्व दीप दिव्य संदेश

(मासिक पत्रिका)

वर्ष – 23 | विक्रम संवत् – २०७६ | अङ्क–3 | अगस्त, 2019

✻ प्रमुख संरक्षक ✻

परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी

परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

✻ प्रेरणास्रोत ✻

भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

✻ संस्थापक ✻

परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

✻ संरक्षक ✻

सार्वभौम जगद्गुरु महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी

✻ परामर्शदाता ✻

पण्डित अनन्त शर्मा

डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर

✻ प्रधान संपादक ✻

महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

✻ संपादक ✻

सोहन लाल गर्ग

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

✻ सह–संपादक ✻

डॉ. रामदेव साहू

डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा

तिबोर कोकेनी

श्रीमती अन्या वुकादिन

✻ सहयोग ✻

डॉ. योगेश कुमार, नवीन जोशी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोडाला, जयपुर

website : vgda.in, Youtube : www.youtube.com/c/vishwagurdeepashram

Email : jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

	Best Wishes		**3**
	सम्पादकीय		**5**
1.	पुष्पिका के प्रकाश में श्रीमद्भगवद्गीता का स्वरूप	अनन्त शर्मा	7
2.	नवरात्रि और स्वास्थ्य	डॉ शिवदत्त शर्मा	20
3.	वास्तुशास्त्रीय चिन्तन परम्परा – प्रासाद चिन्तन (वास्तुविन्यास व मन्दिर वास्तु)	डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा	22
4.	WELLNESS GASTRONOMY AND SUPRA-INDIVIDUAL CONNECTIONS OF NOURISHMENT	Tibor KÖKÉNY	28

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण : **आइडियल कम्प्यूटर सेन्टर**,3580 मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर ⁂ मो. 9829028926

Best wishes

Dear readers,

It is a great honour for me to be the part of the team that restarted the 'Vishwa Deep Divya Sandesh' magazine after almost twenty years. In this era of media overload to start, yet another magazine is very difficult. But still, we would like to share with all of you the things we do in our Research Centre. This magazine will have two forms, printed one and an online one. The online form is for scholars all over the world who could benefit from our work.

Our Gurudev Vishwaguru Paramhans Swami Maheshwaranandaji left India in the 1970s to teach yoga and the values of Vedic Culture in the west. In doing so, Yoga in Daily Life, the system was created and is now practised all over the world in more than 4500 centres. Although living and working in foreign countries for so long, he never forgot his roots. In 1990 he started building an Om Ashram, a building in the shape of Om, unique in the whole world in Jadan, Pali district of Rajasthan. In 2002 he also founded Yoga in Daily Life Foundation registered in New Delhi. Its branches are all over India, but main centres are in Jadan, Nipal and Bola Guda (Pali District), Kailash (Sikar), Badi Khatu and Kachriyavas (Nagaur) and Jaipur.

With the opening of Vishwaguru Deep Ashram Research Centre in 2016, a new page was turned in the life of the Foundation. Going to the roots of Indian Culture means to study Sanskrit and Vedas. Affiliation with Jagadguru Ramanandacharya Sanskrit Vishvavidyalaya transformed this idea into the practice. The world of Sanskrit literature is vast. Stretching from the time immemorial, the Vedas till today, the literature world is full of jewels. When I was asked what the Research Centre will do, I answered: "Everything!" How can I decide between Vyakarana, Jyotish, Darshana, literature and all other amazing topics? It is simple if it is in Sanskrit, it is for us. If nobody wants to do it, we shall. We also expanded to include all Indian languages, specially Marwari as the masters of our Parmapara wrote so many bhajans in Marwari.

I would kindly request all the readers who are interested in the promotion of Sanskrit

roots, Indian Culture, Vedas or any other topics to help us maintain this magazine with their articles.

I want to thank all professors who have been helping us and will help us in the future.

My special thanks go to Pandit Anant Sharma, Dr. Kailash Chandra Sharma, Dr. Shivdutt Sharma and Sh. Tibor Kokeny for their article and support.

Naturally, I would like to express my endless gratitude to my Gurudev, Vishwaguru Swami Maheshwaranandaji without whom nothing of this would be possible.

Yours sincerely,
Mahamandaleshwar Swami Gyaneshwar Puri

सम्पादकीय

सभ्यता एवं संस्कृति सतत् प्रवाहमान जीवनधारायें हैं जो भारतीय दृष्टि से मानव के जीवनदर्शन का महत्त्वपूर्ण आधार रही हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के आदर्श चिरन्तनकाल से विश्व मानव को अभिप्रेरित करते रहे हैं। भारत का सांस्कृतिक दिव्य सन्देश आज भी मानवीय चिन्तन को नया आयाम प्रदान करता है। "विश्व दीप दिव्य सन्देश" भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु कृतसंकल्प है। इसका यह अङ्क भारतीय अस्मिता, गौरव, ज्ञान के उन ज्ञात-अज्ञात पहलुओं को आपके समक्ष प्रस्तुत करता है जिनकी आज के वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में भी सर्वाधिक अपेक्षा, आवश्यकता एवं उपादेयता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के सन्दर्भ में पं. अनन्त शर्मा ने गीता के प्रवचनकार भगवान कृष्ण के मानस को आधार बनाकर पुष्पिका के सहारे अपने विचार व्यक्त करने के संकल्प का यह मूर्तरूप विद्वज्जनों की सेवा में प्रस्तुत किया है।

डॉ. शिवदत्त शर्मा ने नवरात्री के अनुष्ठान से मनुष्य के शरीर के ऊपर चमत्कारिक प्रभाव होता है। उसको स्पष्ट किया है और नवरात्रा के महत्व को प्रतिपादित किया है। इस अनुष्ठान से अनेक रोगों की समाप्ति होती है।

डॉ. कैलाश चन्द शर्मा ने वास्तु देवता की पूजा अर्चना को बताया है। गृह प्रवेश गृहनिर्माण के वास्तु देवता के महत्व को स्पष्ट किया है और भारतीय वाङ्मय में सभी देवताओं की स्तुति को स्पष्ट किया है। वास्तुशास्त्र विषयक ज्ञज्ञन को प्रस्तुत किया है।

दिव्य संदेश के सभी लेख एवं कवितायें आपको भारतीय ज्ञानगरिमा का अवगाहन करने का अवसर प्रदान करती है। आशा है यह अंक आप सभी पाठकों को अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर करने में पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होगा।

–सम्पादक

पुष्पिका के प्रकाश में श्रीमद्भगवद्गीता का स्वरूप

पं. अनन्त शर्मा
भारतीय विद्या मनीषी

श्रीमद्भगवद्गीता पर हुए अध्ययनों की इयत्ता की संख्या में प्रस्तुत कर पाना जहाँ एक ओर अत्यन्त दुष्कर कार्य है वहीं दूसरी ओर आभ्यन्तर किसी पक्ष को लेकर विचार कर पाना भी उपयुक्त नहीं लग रहा है क्योंकि विभिन्न विद्वान् इस पर विभिन्न दृष्टियों से अवश्यमेव अपने विचार व्यक्त करेंगे ही, अत: गीता के ऐतिह्य को तथा गीता प्रवचनकार भगवान् कृष्ण के मानस को आधार बना कर पुष्पिका के सहारे अपने विचार व्यक्त करने के संकल्प का यह मूर्तरूप आप विद्वज्जनों की सेवा में प्रस्तुत है।

गीता की स्वयं में निविष्ट पुष्पिका का रूप है– ओम् तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुन विषाद योगो नाम प्रथमोऽध्याय:।

आगे प्रत्येक अध्याय को योग विशेष कहते हुए अध्याय गणना का क्रम समाप्ति तक है।

गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित सानुवाद महाभारत में प्रारम्भ में 'इतिश्री महाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि' अंश और है शेष श्रीमदभगवद्गीतासूप. भाग गीता की सामान्य पुष्पिका जैसा है। अन्त में इतना भाग और है कि 'भीष्मपर्वणि तु पञ्चविंशोऽध्याय:।

यद्यपि पूर्व में अनेक भाष्यों और टीकाओं की सत्ता का उल्लेख भगवान् आद्यशंकराचार्य के भाष्य में है तथापि प्राप्ति की दृष्टि से शाङ्करभाष्य ही प्रथम है। वहाँ की पुष्पिका 'इति श्री महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्म पर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्य योगो नाम द्वितीयोऽध्याय:' है।

इस पुष्पिका का प्रारम्भिक अंश अतीव महत्त्वपूर्ण है। पाश्चात्य विद्वानों की स्थापनाओं का अन्धानुकरण करते हुए भारतीय विद्वान् भी प्राय: यह मानते हैं कि मूल महाभारत केवल 24000 पद्यों का था, इसका वर्तमान कलेवर 9वीं 10वीं शताब्दी तक बढते बढते निष्पन्न हुआ है। महाभारत का प्रणयन ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ है। ऐसे विचारों को धराशायी करने के लिए इस पुष्पिका का 'शतसाहस्री वैयासिकी संहिता' भाग वज्रोपभ है।

भगवान् शंकराचार्य का समय ईसा से 509 वर्ष पूर्व अर्थात् आज से 2510 वर्ष पूर्व का है। उस समय एकलक्ष श्लोकों की व्यास की महाभारत संहिता आचार्य के सम्मुख विद्यमान है। आचार्य के समकालिक उनसे 48 वर्ष बडे भट्ट कुमारिल आदि पर्व से स्वार्गारोहण पर्व तक की महाभारतसंहिता से अनेक पद्य उद्धृत करते हैं तथा विभिन्न विषयों पर अपने गम्भीर विचार व्यक्त करते हैं। इनसे पूर्ववर्ती

महामति कौटिल्य अर्थशास्त्र में (ईसा पूर्व 1500) महाभारत के पूर्ण स्वरूप से अपना परिचय व्यक्त करते हैं। इनसे पूर्व महाभाष्यकार पतञ्जलि तथा भगवान् पाणिनि सूत्रपाठ और गणपाठ में सञ्जय कुरु आदि से तथा 'वासुदेवार्जुनौ' जैसे शतश: महाभारतीय वचनों से महाभारत के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। अत: महाभारत को ईसापूर्व प्रथम द्वितीय शताब्दि में निर्मित बनाना जानाबूझा षड्यन्त्र है।

महाभारत का निर्माण भगवान् वेदव्यास द्वारा युद्ध के 80-90 के पश्चात् किया गया था। जनमेजय के सर्वसत्र का वर्णन इसमें है तथा उसी समय व्यास की आज्ञा से उनकी उपस्थिति में ऋ षि वैशम्पायन में जनमेजय को महाभारत सुनाया था। युधिष्ठिर का शासन 36 वर्ष, परिक्षित का 24 वर्ष रहा। इसके पश्चात् जनमेजय का शासन तथा सर्वसत्र आदि को 30वें वर्ष में मानें तो यह 90 वर्ष का काल आता है। महाभारत का अभिन्न भाग होने से यही काल गीता के ग्रथन का हे। विधिपूर्वक गीता का श्रावण और श्रवण प्रथमबार वैशम्पायन और जनमेजय द्वारा किया गया।

भगवान् कृष्ण द्वारा उपदिष्ट गीता का श्रवण अर्जुन के साथ-साथ सञ्जय एवं श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने किया। श्रीकृष्ण की पदावलि में गीता का निजी रूप में श्रवण महाराज धृतराष्ट्र ने दसवें दिन सञ्जय के मुख से किया।

भीष्म पर्व के 13वें अध्याय का प्रारम्भ भीष्मपितामह की मृत्यु के वृत्त से प्रारम्भ होता है। वैशम्पायन कहते हैं–

अथ गावल्गणिर्विद्वान् संयुगादेत्यभारत।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित्।।1।।
ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दु:खित:।
अचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम्।।2।।

भीष्म का निधन 10वें दिन अपराह्न में हुआ था। युद्धभूमि से लौट कर सञ्जय ने संक्षेप में यह सुनाया जो 11 पद्यों में ग्रथित है। धृतराष्ट्र के द्वारा विस्तरश: सारी बातें सुनाने के लिये कहने पर सञ्जय प्रथम दिन से दस दिन तक का वृत्तान्त कहता है।

14वां अध्याय धृतराष्ट्र के विलाप का है। 15वें से 18 तक 4 अध्यायों में कौरवों की तैयारी सेना तथा व्यूह रचना का वर्णन है। इसी भाँति 19 से 24 पाण्डवों और कौरवों की सेनाओं की स्थिति व्यूह रचना आदि का मिला जुला वर्णन है। 25वें से गीता का आरंभ है। गीता की भूमिका होने से 'गीता-पर्व' का आरम्भ 13वें अध्याय से ही हो जाता है।

दस दिन पूर्व सुनी गीता सञ्जय द्वारा ज्यों की त्यों 10 दिन बाद सुना दी जाती है इसमें भी अविश्वास को स्थान नहीं है। युद्धवृत्त कथन प्रारम्भ करते हुए सञ्जय कहता है–

नमस्कृत्वा पितुस्तेऽहं पाराशर्याय धीमते।
यस्य प्रसादाद् दिव्यं तत् प्राप्तं ज्ञान मनुत्तमम्।।15।7
दृष्टिश्चालीन्द्रिया राजन् दूराच्छ्रवणमेव च।
परचित्तस्य विज्ञान मतीतानागतस्य च।।8
व्युत्थितोत्पत्तिविज्ञानमाकाशे च गतिः शुभा।
अस्त्रै रसंगोयुद्धेषु वरदानान्महात्मनः।।9
शृणु में विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम्।
भरतानामभूद् युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम्।।10

आपके पिता, धीमान् पराशरनन्दन व्यास को प्रणाम कर मैं यह सब कह रहा हूँ, इस महात्मा व्यास के प्रभाव से मुझे अति श्रेष्ठ दिव्यज्ञान मिला है जिसमें अतीन्द्रिय दृष्टि, दूर श्रवण, परचित्तविज्ञान, भूत-भविष्य का ज्ञान, व्युत्थितोपत्ति विज्ञान, आकाशगमन, तथा युद्धों में अस्त्रों से बचे रहना है। भरतों के उस लोमहर्षण परम अद्भुत युद्ध को विस्तार से सुनिये।

इस विवरण से स्पष्ट है कि अर्जुन के साथ गीता के प्रथम श्रोता सञ्जय, द्वितीय श्रोता सञ्जयमुख से 10वें दिन धृतराष्ट्र, तृतीय श्रोताओं में 90 वर्ष के बाद व्यासशिष्य पैल, शुक वैशम्पायन आदि महाभारताध्ययनकाल में, चतुर्थ श्रोता इसके कुछ ही समय पश्चात् वैशम्पायन मुख से जनमेजय आदि सहस्रों लोग महाभारत श्रवण के समय।

सञ्जय ने धृतराष्ट्र को गद्य में गीता सुनाई थी तथा साक्षात् उसी रूप में जिस रूप में कृष्ण ने अर्जुन को उपदिष्ट की थी, यही वास्तविक 'कृष्णार्जुन संवाद' है। हमें प्राप्त गीता यद्यपि उपदेश की दृष्टि से अपने मूल रूप में ही है तथापि उसका शाब्दिक कलेवर भगवान् वेदव्यास का दिया हुआ है, पद्य व्यास की ही रचना है, महाभारत का अंश होने से पद्यात्मकता अनिवार्य थी। व्यास द्वारा निबद्ध इस गीता का स्वरूप इतिहास का एक अंग होने से क्रम आदि की दृष्टि से मूल गीता से कुछ भिन्न है ऐसा अभिमत समीक्षा चक्रवर्ती श्री मधुसूदन ओझा है जो उनके गीता विज्ञान भाष्य में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

ब्रूमो वयं तु येऽध्याय विभागाा अत्र दर्शिताः।
ते महाभारतग्रन्थानुरोधादैलिहासिकाः।। प्रथम भाग पृष्ठ 12
अस्ति वैज्ञानिकं शास्त्रं गीतेयं ब्रह्मकर्मणोः।
विशिष्येहात्मविद्यायां बुद्धियोगो विधीयते।।
यस्तु वैज्ञानिकानय विभागान् ज्ञातुचिम्छति।
वैज्ञानिकक्रमस्तस्मै भिन्नवत् परिदर्श्यते।।

श्री ओझाजी ने अलौकिक प्रतिभा के बल से गीता में 4 विधाएँ, 24 उपनिषत् तथा एक सौ साठ उपदेश देखें है जिनको व्याख्या सहित गीता विज्ञान भाष्य में प्रस्तुत किया है–

सन्ति विद्याश्चतस्र उपनिषदों विंशतिश्चतस्रश्च।
उपदेशाः षष्टिशतं सेयं गीतानुगीयतामनिशम्।।12

यहाँ यह ध्यातव्य है कि यहाँ निर्दिष्ट 4 विधा 24 उपनिषत् तथा 160 उपदेश भगवान् कृष्ण के जीवन दर्शन के मौलिक सिद्धान्त है। अतः द्रष्टा के वाक्य होने से इनका श्रुतित्व है। श्रुति का यह रूप भगवान् व्यास के द्वारा उनकी पदावलि में प्रस्तुत किया जाने से स्मृति है अतः युगपदेव इसे श्रुतिस्मृति का स्थान प्राप्त है। यही कारण है कि पूर्व प्रचलित उपनिषदों में से कोई 24 उपनिषत् यहाँ गृहीत नहीं है और न इनका सार ही यहाँ है ये कृष्णदृष्ट एवं कृष्ण प्रोक्त स्वतन्त्र 24 उपनिषत् है। भारतीय वाङ्मय का आर्ष दृष्टि से अपेक्षित अवगाहन न होने से तथा अनेकानेक विदेशीय और स्वदेशीय विद्वानों के प्रतिपादन को युक्ति, प्रमाण के द्वारा भलीभाँति परीक्षित किये बिना स्वीकार कर लेने से गीता में एकसूत्रता न पाकर अनेक विद्वानों ने गीता में प्रक्षेप देखे हैं। इस दृष्टि का केवल एक उदाहरण ही प्रस्तुत करना यथेष्ट होगा जिसमें बताया गया है कि गीता लीन विभिन्न कालिक तीन व्यक्तियों की कृति है।

डॉ. गजानन श्री खैर एम.ए. पीएच.डी का ग्रन्थ 'मूल गीतेचा शोध' है, इसका प्रतिपाद्य है– गीतेचे तीन लेखक व तीन कालखण्ड'। इसमें बताया गया है कि प्रथम लेखक प्रारम्भिक छह अध्यायों का है, द्वितीय लेखक तीसरे छह अध्यायों का तथा तृतीय लेखक मध्यवर्ती छह अध्यायों का है।

ग्रन्थान्त में अर्थात् 161 पृष्ठ के पश्चात् पृष्ठ 162 से 195 तक तीन भिन्न मसियों में गीता मुद्रित है। प्रथम लेखक के पद्य लाल स्याही में, दूसरे लेखक के नीली स्याही में तथा तीसरे लेखक के पद्य काली स्याही में है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अध्याय में भी दो अथवा तीन लेखकों के पद्य स्याही के वर्णों से पृथक् पृथक् मुद्रित है, उदाहरणार्थ प्रथम अध्याय में प्रारम्भ के 19 पद्य पुनः 38 से 44 पद्य तृतीय लेखक के हैं। 20 से 37, 45-47 प्रथम लेखक के हैं।

इससे स्पष्ट है कि सभी अध्यायों में प्रायः एकाधिक लेखकों के तथा कुछ में तीनों लेखकों के पद्य घुले मिले हैं। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का विवेचन यहाँ अवसरोचित होते हुए भी निबन्ध के स्वरूप की सीमा के प्रतिकूल होने से उपयुक्त नहीं है। इतनी ध्वनि इससे निकलती है कि व्यास से लेकर विभिन्न सम्प्रदायाचार्यों तक के सभी मनीषी मिथ्याचारी हैं अथवा विवेकबुद्धि शून्य हैं जो सम्पूर्ण गीता को कृष्ण प्रोक्त एवं व्यास निबद्ध मानते हैं। इनसे भिन्न विश्व के अनेक दार्शनिक भी गीता के महत्त्व और इसके वक्ता के अनन्यसाधारण व्यक्तित्व को यथावत् स्वीकार करते हैं। यह भी यहाँ विचारणीय है कि कृष्ण प्रोक्त गीता को ग्रन्थ रूप भगवान् व्यास ने दिया है, अतः जहाँ जहाँ भी भावसाम्य है वहाँ वहाँ व्यास ने प्रायः पूर्व पद्य को पूर्णरूप में, अर्धरूप में, पादरूप में प्रस्तुत कर दिया है। यदि उन्हीं भावों को व्यक्त

करने वाला कोई पूर्व पद्य रहा हो तो व्यास ने उसे यथावत् ले लिया है अथवा अर्थबोध की दृष्टि से कुछ सरल कर प्रस्तुत कर दिया है। इस प्रकार गीता को प्राय: सम्पूर्ण महाभारत में देखा जा सकता है। इन सब विषयों पर श्री खैर ने तनिक भी विचार नहीं किया है।

महाभारत के अध्ययन से तथा गीता के परिशीलन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण ने अतिशय दृढ संकल्पपूर्वक योग्य पात्र को गीता ज्ञान देने हेतु अपनी ही शक्ति से अनुकूल वातावरण तथा परिस्थिति पैदा की है, गीता का एकमात्र उद्देश्य धर्म का स्वरूप निर्भ्रान्त रूप में प्रकट करना है।

उस युग में सम्पूर्ण समाज वेद वेदाङ्गों का निष्णात होता था, नित्य नैमित्तिक काम्य कर्मों का श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान सभी करते थे, पर्व, समारोह आदि के कृत्य, तीर्थ यात्रा, श्राद्ध, दान दक्षिणा सभी सोत्साह सम्पन्न करते थे, यह सब कुछ होते हुए भी धर्मग्लानि सर्वत्र व्याप्त थी। धर्म का अभ्युदय और नि:श्रेयस साधक रूप लोग भुलाते जा रहे थे, धर्म चरति इति धार्मिक के वास्तविक रूप में लोग धार्मिक नहीं थे, धर्मभीरू थे अथवा धर्मातिक्रमण करने वाले थे, भावुक थे, स्थितप्रज्ञ नहीं थे। इसी का ज्ञान कृष्ण करवाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अपने ही जैसे पात्र को चुना था। कृष्ण ने उसमें मोह उत्पन्न कर विषाद का योग करवाया था, अत: भूमिका रूप प्रथम अध्याय का नाम विषाद योग है।

जन्म से लेकर 89 वर्ष की आयु तक कृष्ण ने सतत अध्यवसाय और स्थितप्रज्ञता से अधर्मरुचिजनों का व्यक्तिश: तथा समुदायश: विरोध और नाश किया है। परिवार, रिश्तेदारी मित्रता आदि की भावना कभी उनके अभियान में बाधक नहीं बनी। यद्यपि ऐसे अवसरों पर उन्होंने अधर्म के समुत्थान तथा धर्मग्लानि को दूर करने के सम्बन्ध में अपने स्पष्ट विचार प्रकट किये हैं किन्तु ये विचार सामयिक नीति के रूप में लिये जा सकते हैं सनातन सार्वभौम सिद्धान्त के रूप में लोग नहीं लेंगे अत: कृष्ण इस रूप में इन्हें व्यक्त करना चाहते थे।

महाभारत युद्ध में 36वें वर्ष पाण्डवों का महाप्रयाण तथा कृष्ण का लीला संवरण हुआ था, उस समय कृष्ण 125 वर्ष के थे, फलत: महाभारत युद्धकाल में 125-36 = 89 वर्ष के थे। यही आयु अर्जुन की थी।

कृष्ण की भाँति ही अर्जुन का जीवन भी संघर्षमय एवं कर्मठ था। वह महान् योद्धा, धनुर्वेदाचार्य, सत्यसन्ध, सानुक्रोश था। भगवान् शंकर के साथ उसने युद्ध किया, अकेले ने निवात-कवचों का संहार किया, गोग्रहण के समय सभी कौरव महारथियों के साथ अकेले में युद्ध किया तथा विजय प्राप्त की। अभिमन्यु एवं सात्यकि का, समस्त वृष्णिकुमारों और अन्य राजकुमारों का, अर्जुन धनुर्वेद का गुरु था। ये सभी ब्रह्मचर्य दीक्षापूर्वक शिक्षा लेने वाले थे। सम्बद्ध पद्य देखिये-

चतुष्पादं दशविधं धनुर्वेद मरिन्दम।
अर्जुनाद् वेद वेदज्ञ: सकलं दिव्यमानुषम्।।

आदि प. 220/73

यह अभिमन्यु के विषय में है कि वेदज्ञ अभिमन्यु ने चतुष्पाद दशविध दिव्य और मानुष धनुर्वेद की शिक्षा अर्जुन से प्राप्त की।

अर्जुनं ये च संश्रित्य राजपुत्रा महाबला:।

अशिक्षन्त धनुर्वेदं रौरवाजिनवासस:।।

तत्रैव शिक्षिता राजन् कुमारा वृष्णिनन्दना।। सभा.प.4/33-4

द्रोणपर्व का प्रसङ्ग है। सूर्यास्त के पश्चात् भी युद्ध रोका नहीं गया। अर्धरात्र का समय हो गया, सैनिक श्रम और निद्रा के वेग से विकल थे। अर्जुन ने इस स्थिति में तत्काल युद्ध बन्द कर देने का आदेश दे दिया। देवों ने महर्षियों ने तथा सभी सेनाओं ने अर्जुन की इस उदारवाणी का अभिनन्दन किया (32)। इस घोषणा से सुख प्राप्त कौरव सेना के सैनिकों ने अर्जुन की वाङ्मय पूजा की–

त्वयिवेदास्तथास्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ।

धर्मस्त्वयि महाबाहो दयाभूतेषुत्तानध।।184/35

यच्चाश्वस्ता स्तवेच्छाम शर्म पार्थ तदस्तुते।

मनसश्च प्रियानर्थान् वीर क्षिप्रमवाप्नुहि।। 36

नरनारायण के नित्य युगल में नर स्थानीय अर्जुन कृष्ण का पैतृस्वस्रेय भ्राता है साथ ही बहनोई भी। ऐसे सर्वगुण सम्पन्न अतएव प्रिय एवं पात्र को कृष्ण ने उपदेश के लिए तैयार किया।

'तैयार किया गया' जैसे वाक्यांश से चौकनें की आवश्यकता नहीं है। आत्म विस्मृतिजन्य मोह तथा तन्निमित्त विषाद अर्जुन के स्वरूप के प्रतिकूल हैं। उसे मोह भी होता है एवं वह भी ऐसा कि कृष्ण के प्रेरक वचनों की भी घोर उपेक्षा कर देता है तथा अकृतप्रज्ञ व्यक्ति की भाँति तर्क करता चला जाता है। यह सब कुछ कृष्ण की इच्छा से हो रहा क्योंकि उसके माध्यम से कृष्ठ समस्त विश्व को यह ज्ञान देना चाहते हैं। कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया उसका सार सर्वस्व तो अर्जुन युधिष्ठिर को पहले ही दे चुका था–

त्यक्त्वाधर्मं च लोभं च मोहं चोधममाश्रिता:।

युध्यध्वमनहंकारा यतोधर्मस्ततोजय:।। भीष्म प. री.11

देवासुर संग्राम में देवों को उपदिष्ट पितामह, ब्रह्मा का यह वचन है। यह कहकर अब अर्जुन अपनी ओर से कहता है–

एवं राजन् विजानीहि ध्रुवोऽस्माकं रणेजय:।

यथा तु नारद: प्राह यत: कृष्णस्ततोजय:।। 21.12

गुणभूतो जय: कृष्णे पृष्ठतोऽभ्येति माधवम्।

तद् यथा विजयश्चास्य सन्नतिश्चापसेगुण:।।13

तस्य ते ज त्र्यथां काञ्चिदिह पश्यामि भारत।

यस्य ते जय माशास्ते विश्वमुक् त्रिदिवेश्वरः।।17

कौरवों की सुसज्जित विशाल वाहिनी को देखकर विषादमग्न युधिष्ठिर को समझते हुए अर्जुन का उपसंहार वाक्य था यह।

बृहतीं धार्तराष्ट्रस्य सेनां दृष्ट्वा समुद्यताम्।

विषादभगमद् राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।।21.1

इसी विषाद के नाशक अर्जुन के वचन थे। इससे पूर्व अर्जुन अपनी सेना का वज्रव्यूह बनाा चुका था, इसके पश्चात् एवं युद्धारम्भ के पूर्व घण्टे दो घण्टे पहले की बात यह हो सकती है। इसके तुरन्त पश्चात् ही गीतोपदेश है।

विराटनगर में अज्ञातवास के काल की समाप्ति के क्षणों में राजकुमार उत्तर के सारथि के रूप में अर्जुन होता है। भीष्मादि को देखकर भयभीत उत्तर कहता है–

दृष्ट्वैवहि कुरुनेतान् व्यूढानीकान् प्रहारिणः।

हृषितानि च रोमाणि कश्मलं चागतं मम। विराट प. 38/15

अर्जुन ने आश्वासन देकर उत्तर का कश्मल दूर किया। भगवान् कृष्ण के निर्देश से भगवती दुर्गा का स्तवन कर अर्जुन उनसे विजय का वर प्राप्त करता है। यह गीतोपदेश के ठीक पूर्व की घटना है। अन्तरिक्षवाणी के माध्यम से दुर्गा कहती है–

स्वल्पेनैव तु कालेन शभूञ्जेष्यसि पाण्डव।

नरस्त्वमसि दुर्धर्षः नारायणसहायवान्।। भीष्मपर्व 23/18

इन सभी प्रसंगों से स्पष्ट ही है कि अर्जुन ज्ञानी है, धर्मनिष्ठ है, अनेक युद्धों का विजेता निर्भय महारथ है। अतः इसके समक्ष जय पराजय मृत्यु जैसा प्रश्न नहीं है। वह एक दृष्टि से दुर्बुद्धि दुर्योधन के प्रिय सम्पादन की इच्छा वाले योद्धाओं को देख लेना चाहता है। अतः कृष्ण को कहता है कि अच्युत। दोनों सेनाओं के मध्य मेरा रथ खडा कीजिये। श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के मध्य उस स्थल पर रथ को खड़ा किया जहाँ भीष्म पितामह एवम् उनके रक्षक सभी प्रमुख वीर थे। साथ ही कृष्ण बोले भी इन समवेत कुरुओं का देखो।

अर्जुन दोनों सेनाओं पर दृष्टि डालता है, दृष्टि डालते ही उसे दोनों ओर स्वजनों का विशाल समुदाय एक साथ देखने को मिलता है जिसमें पितृगणो (पिता, चाचा, ताऊ) पितामहों आचार्यों, मातुलों, भाइयों, पुत्रो पौत्रों, पित्रों, श्वसुरों और सुहृदों को मृत्युमुख में जाने को उद्यत देखता है। कृष्ण के वाक्य तथा इस दर्शन से स्वजन स्नेहजन्य मोह अर्जुन को आविष्ट कर लेता है। उनकी मृत्यु की तथा उसके

परिणामों की कल्पना से वह काँप उठता है तथा अतीव विषण्ण हो जाता है। वनपर्व में मोह एवं विषाद आदि के विषय में कहा गया है–

मोहो हि धर्ममूढत्वं मानस्त्वात्माभिमानिता।
धर्मनिष्क्रियतालस्यं शोकस्त्वज्ञानमुच्यते।। वन 395/94
धर्ममूढता मोह एवम् अज्ञान शोक है,
न विषादे मनः कार्यं विषादो विषमुत्तमम्।
मारयत्वकृतप्रज्ञं बालं क्रुद्ध इवोरगः।। 216/24
यं विषादोऽभिभवति विक्रमे समुपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न विद्यते।। 25

विषाद की ओर मन ढला कि महामारक उग्र विषतुल्य विषाद ने मनुष्य को मारा विक्रमकाल में विषाद का होना व्यक्ति को तेजोहीन कर धर्मार्थकाममोक्ष के पुरुषार्थ से हीन कर देता है।

अब तक के समस्त युद्ध या तो शत्रुओं के साथ थे या प्रतिपक्ष में अर्जुन एकाकी था। प्रतिपक्षी योद्धाओं को मारना अथवा न मारना उसके हाथ की बात थी। जैसे गोहरण युद्ध में उसने प्रस्वापनास्त्र से सब को बेहोश कर दिया तथा युद्ध सीमा से बाहर आकर खड़ा हो गया। चेतना आने पर जब दुर्योधन भीष्म पितामह को उलाहना देता है कि आपके हाथों अर्जुन कैसे छूट गया, इसे मसल डालिये। तब भीष्म हँसकर कहते हैं–

क्व ते गता बुद्धि रभूत् क्व वीर्यम्। विराट पर्व 66/20
शान्तिं परां प्राप्य यदास्थितोऽभू
रुत्सृज्य बाणाँश्च धनुर्विचित्रम्।
न त्वेष बीभत्सुरलं नृशंसं
कर्तुं न पापेऽस्य मनो विशिष्टम्।।21।।
त्रैलोक्य हेतोर्नजहेत् स्वधर्मं सर्वे न तस्मान्निहता रणेऽस्मिन्।
क्षिप्रंकुरुन् याहि कुरु प्रवीर विजित्यगाश्च प्रतियातुपार्थः।।22।।

दुर्योधन। तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा बल कहाँ गये? जब पूर्ण मूर्च्छावस्था में, धनुषबाण गिराकर तुम पड़े थे क्या उस समय इय बीभत्सु (अर्जुन) नृशंसतापूर्ण कृत्य करने को तुम सभी के प्राण करने को समर्थ नहीं था? वस्तुतः इसका मन पापकर्म में तनिक भी अनुशासित नहीं है। 20-21 तीनों लोकों की प्राप्ति के लिये भी यह स्वधर्म छोड़नें वाला नहीं है। तभी इसने हम सब का वध नहीं किया। तुम अपने कुरुप्रदेश को तत्काल लौट चलो और वह पार्थ भी गायें जीतकर लौट जावे।।22।।

इस युद्ध में सेनायें निर्णायक युद्ध लड़नेवाली थी अर्जुन का वश नहीं था कि वह प्रियजनों को

बचाले। इसी आशंका से भयभीत वह यह भी भूल जाता है कि युद्ध का उद्देश्य धर्मस्थापना, अधर्मात्माओं को दण्ड देने के माध्यम से है। वह समझ बैठा कि हम राज्य प्राप्ति के लिए लड़ते हुए स्वजनों के नाश पर तुले हैं। इस नृशंस कर्म से हमें विरत हो जाना चाहिये। जिस वर्णसंकरता की भयानक कल्पना करता है इसका ध्यान उसे पूर्वयुद्धओं में क्यों नहीं आया। वह भीख माँग कर जीने के लिये भी तैयार है जिसके लिए कुन्ती ने युधिष्ठिर आदि पुत्रों को कृष्ण के माध्यम से विशेष रूप से अक्षत्रियोचित कर्म कहा था–

भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषि नैंवोपपद्यते।
क्षत्रियोऽसि क्षतात्भाता बाहुवीर्योपजीविता।।132/31

सन्धि के लिये आये कृष्ण जब असफल लौटते हैं तो कुन्ती से मिलने जाते हैं। उस समय कुन्ती विस्तृत सन्देश में यह बात भी कहती है। वनपर्व 33में भीम युधिष्ठिर को क्षात्रधर्म पालन के लिए कहते हें। इस चर्चा में 49 से 53 तक 5 पद्यों में 'न चार्थो भैक्ष्य चर्येण' 'प्रतिषिद्धा हि ते याच्ञा' भैक्ष्यचर्या न विहिता' रूप में तीन वार भिक्षा का निषेध है। अर्जुन आदि के मानस में ये भाव कूट कूट कर भरे हुए हैं। मोह की प्रबलता से अर्जुन इन सबको भूल जाता है।

अर्जुन जैसे व्यक्ति का इस रूप में मोहा विष्ट होना तथा कर्तव्या कर्तव्य निर्णय में सदैव जागरुक अर्जुन का शस्त्र सम्पात काल में धर्मभीरू हो जाना कृष्ण की इच्छा का ही परिणाम है।

इसे कृष्ण की इच्छा से उद्‌भूत मानना अकारण नहीं है। कृष्ण कहते हैं–

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।18/67
य इमं परमं गुह्यं मद्‌भक्तेष्वभिधास्यसि।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्वसंशयः।। 68
अध्येष्यते व य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मेमतिः।।

भगवान् अर्जुन से अपेक्षा रखते हैं कि इस ज्ञान का उपदेश रूप में प्रचार होना चाहिये किन्तु अपात्र को किसी भी स्थिति में यह ज्ञान न दिया जावे।

गुरुशिष्यवृत्ति विना ज्ञान का आदान प्रदान सफल नहीं होता है। इसे भी गीता के आरम्भ में बता दिया गया है। अर्जुन अपनी वास्तविक स्थिति बताते हुए स्वयं को पूर्णतया शिष्य रूप में अर्पित कर श्रेयः के निस्सदिग्ध अनुशासन की प्रार्थना करता है–

कार्पण्य दोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपनाम्।2/7

अर्जुन स्वीकर करता है कि उसका काम्य ब्राह्मणभाव कार्पण्य दोष से दब गया है फलतः क्षत्रिय

रूप स्वभाव भी अकिञ्चित्कर हो गया है तथा धर्म के विषय में वह पूर्णतया मोहग्रस्त हो गया है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने गार्गी को ब्राह्मण और कृपण का स्वरूप बताया है–

गो वा एतदक्षरं गार्गि अविदित्वाऽस्मिन् लोके जुहोति
यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्राणि, अन्तवदेवास्यतद्भवति,
यो वा एतदक्षरं गार्गि अविदित्वाऽस्याल्लोकात् प्रैति स कृपणः,
अथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः।

अक्षरतत्त्व की प्रतिष्ठा पर हवन यज्ञ तप आदि की सफलता है, इसे जाने बिना सभी धर्मक्रियायें करने के साथ ही नष्ट हो जाती है। अक्षरतत्त्व को न जानने वाला तथा इस लोक से जाने वाला 'कृपण' है, जो अक्षरतत्त्व को जानकर इस लोक से जाता है वह ब्राह्मण है। अर्जुन इसी अर्थ में कार्पण्य का प्रयोग कर रहा है।

कृष्ण प्रोक्त ज्ञान का तद्भक्तों में उपदेष्टा भगवान् में पराभक्ति की और भगवान् की प्राप्ति करता है। इसी भाँति इस धर्म्यसंवाद का अध्येता ज्ञान यज्ञ से भगवान् का यजन करता है ऐसी मेरी धारणा है।

भगवान् के संकल्प सत्य है अमोघ है, जब तक इस गीतोपदेश को ग्रन्थ रूप न दे दिया जावे तो ये अपेक्षाएँ कैसे पूर्ण होंगी इससे स्पष्ट है कि भगवान् में व्यास के माध्यम से इसके प्रकाशन का संकल्प किया था, वही संकल्प आज मूर्तरूप में है। श्रीमद्भागवत में इसका स्पष्ट संकेत है–

व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
प्रबोधितोऽपीतिहासै र्नाबुध्यत शुचार्पितः।।

निश्चित ही कृष्ण ऐसा अमर उपदेश देना चाहते थे तथा यह सब कुछ उनकी योजना से हो रहा था।

महाभारत में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को उपदिष्ट एक अन्य गीता भी आश्वमेधिक पर्व में 16 से 34 तक 19 अध्यायों में निबद्ध है। इसका नाम अनुगीता है। इसकी भूमिका से भी मद्भगवद्गीता के विषय में श्रीकृष्ण के विचारों का स्पष्ट परिचय मिलता है–

अर्जुन– विदितं मे महाबाहो संग्रामे समुपस्थिते।
माहात्म्यं देवकीमातः तच्च ते रूपमैश्वरम्।।16/5
यत्तद्भगवताप्रोक्तं पुरा केशव सौहृदात्।
तत्सर्वं पुरुषव्याघ्र! नष्टं मे भ्रष्ट चेतसः।।6
मम कौतूहलं त्वस्ति तेष्वर्थेषु पुनः पुनः।
भवाँस्तु द्वारकां गन्ता न चिरादिव माधव!।।7

कृष्णोव्यासः– एवमुक्तस्तु तं कृष्णः फाल्गुनं प्रत्यभाषत।
परिष्वज्य महातेजा वचनं वदतां वरः।।8

कृष्णो देवकीपुत्रः– श्रावितस्त्वं मयागुह्यं ज्ञापितश्च सनातनम्।
धर्मंस्वरूपिणं पार्थ सर्वलोकाँश्च शाश्वतान्।।
अबुद्ध्यानाग्रहीर्यस्त्वं तन्मेसुमहदप्रियम्।
न च साद्य पुनर्भूयः स्मृतिर्मेसम्भाविष्यति।।10
नूनमश्रद्दधानोऽसि दुर्मेधा ह्यसि पाण्डव।
न च शक्यं पुनर्वक्तु मशेषेण धनञ्जय।
परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया।
इतिहासं तु वक्ष्यामि तस्मिन्नर्थे पुरातनम्।।13

जिस अर्जुन के लिए कृष्ण युधिष्ठिर को कहते हैं–

तवभ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च।
मांसान्युत्कृष्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीवते।। भीष्म पर्व 106/33

उसी अर्जुन को अक्षद्दधान तथा दुर्मेधा कहते हैं, गीताज्ञान भूल जाने को सुमहदप्रिय कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि कृष्ण की योजना इस उपदेश की थी। अनुगीता में ही ब्राह्मण गीता है। जिस इतिहास का कृष्ण ने (13वें पद्य में) संकेत किया है वह उनका एक ब्राह्मण के साथ संवाद ज्ञान के विषय में है जिससे कृष्ण की भूतों के प्रति अनुकम्पाा विदित होती है। ब्राह्मण कहता है–

मोक्षधर्म समाश्रित्य कृष्ण! यन्यामपृच्छथाः।
भूतानामनुकम्पार्थं यन्मोहच्छेदनं विभो।।

अन्त में इस ब्राह्मण ब्राह्मणी का परिचय देते हुए कृष्ण कहते है–

मनो मे ब्राह्मणं विद्धि बुद्धिं मे विद्धि ब्राह्मणीम्।
क्षेत्रज्ञ इति यच्चोक्तः सोऽहमेव धनञ्जय!34/12

उपरि उद्धृत भीष्म पर्व के पद्य में कृष्ण अर्जुन के नये सम्बन्ध 'शिष्यत्व' को गिनते हैं। जिसे इस स्थायी रूप में कृष्ण मानते हैं, उनके हृदय के भावों को गीत का रूप देने का प्रशस्त माध्यम अर्जुन क्यों नहीं इस रूप में स्मृत रहेगा। यह एक शब्द 'शिष्य' ही गीता के वास्तविक स्वरूप को व्यक्त करने में सुपर्याप्त है।

समस्त ज्ञानविज्ञान और जीवन की अनुभूतियों का 80-90 वर्षों का सञ्चय जिस योगयुक्त धारणा से सहजरूप में उत्तरोत्तर प्रवाह में व्यक्त होता चला गया है यही इसका गीतत्व है। कृष्ण ने उपनिषदों

का सार नहीं कहा है। उपनिषदादि का सार तो हम अध्ययन अध्यापन प्रवचन आदि में कहते हैं बुद्धि और स्मृति के बल से कण्ठ के द्वारा। अत: इसमें न गीतत्व है और न उपनिषत्त्व है।

जीवन में प्रतिपल अनुवर्तन की कसौटी पर खरे उतरे उपपत्तियुक्त निश्चित सिद्धान्तवचन ही जन्मजन्मान्तर की वासना ग्रन्थियों को खोलने में और ब्रह्मानुभूति को प्राप्त कराने में समर्थ होने से उपनिषत् कहे जाते हैं। श्रुतित्व का यही रूप है। भगवान् कृष्ण का एक एक वचन ऐसा ही हाने से उपनिषत् है श्रुति है। पुष्पिका के 'श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु' का यही भाव है। श्री ओझा जी ऐसी ही 24 उपनिषत् गीता में युक्ति प्रमाणपूर्वक बताते हैं।

पद्य, श्लोक अथवा मन्त्र सुविधा के लिए विषय विभाग की दृष्टि से व्यवहृत नाम है। वेदों में श्लोक हैं तथा गीता में मन्त्र है। अत: पद्यों के कारण गीता को श्रुति न मानना निर्युक्तिक है।

प्रश्नोपनिषत् में 'ऋग्वेद 1.164.12, अथर्व. 9.9.12 के मन्त्र 'पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं.' को 'तदेषा श्लोक:' (1.11) के नाम से बोला गया है। इसी भाँति बृहदारण्यकोपनिषत् 4.4.8 में 'तदेतेश्लोकाभवन्ति' कथन से पढे गये पद्यों में यजुर्वेद (40वाँ) का 'अन्धन्तम: प्रविशन्ति' मन्त्र भी है। इसी भाँति 'ऋचा अभ्युक्तम्' कथन से उद्धृत पद्य वेदों की उपलब्ध शाखा संहिताओं में नहीं मिलते हैं। गीता के उपनिषत्त्व एवं श्रुतित्व पर विचार के समय ये तथ्य दृष्टि में रहने चाहिये।

योग को प्राय: कुछ प्रक्रिया विशेषों तक विशेषत: हठयोग जैसे नामों से बोधित जटिल एवं सर्वसामान्य से असाध्य क्रियाओं तक सीमित कर लिया गया है जो वस्तुत: ठीक नहीं है। दर्शन का स्वरूप सिद्धान्त और योग के समान आश्रयणीयता से निष्पन्न योग्या शब्द 'अभ्यास' और अखाड़ा आदि 'अभ्यासभूमि' के अर्थ में प्राचीन वाङ्मय में प्रसिद्ध रहा है। आयुर्वेद धनुर्वेद आदि की भाँति ज्ञान विज्ञान एवम् आत्मविद्या भी पूर्णतया योग्यासापेक्ष है। कठोपनिषत् के मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथलब्ध्वा विद्यामेतां योग विधिं च कृत्स्नम्। 6/18

इस पूर्वोर्ध मन्त्र में विद्या एवं कृत्स्न योग के साहचर्य को अर्थसिद्धि कर बताया है। योग के अर्थ भी इसी वल्ली के 11वें मन्त्र में (1) स्थिरा इन्द्रियधारणा (2) प्रयत्नाव्यय बताये गये हैं। कृष्ण ने भी गीता में कर्मकौशल और समता आदि योगार्थ बताये हैं। गीता को ब्रह्म विद्या और योग शास्त्र इसी अर्थ में कहा गया है। 18 अध्यायों के 18 नाम योगमूलक ही है। विषयों के सूक्ष्य विभाजन के आधार पर अन्य भी अनेक योग इस ग्रन्थ में है। अत: इसे बारम्बार योगशास्त्र कहा गया है, देह में विद्या, अविद्या, उपदेश्य विषय, ब्रह्म, ऋचा, साम और यजु का योग है। अत: विद्या के साथ योग का अनिवार्य साहचर्य वेदमूल पर ही प्राचीन शास्त्रों में तथा तदनुसार गीता में बताया गया है। एतद् विषयक स्पष्ट अनुशासन अथर्ववेद के इस मन्त्र में है–

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम्।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः समाथो यजुः।

यहाँ अविद्या योग, यज्ञ और कर्म का वाचक हे। पुष्पिका का 'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' इसी तथ्य को बता रहा है।

इन सभी बिन्दुओं को दृष्टि में रखकर विचार करने पर स्पष्ट है कि गीता अपने वर्तमान रूप में परवर्ती कलेवर वृद्धि का परिणाम नहीं है अपितु श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्धारंभ पूर्व इसी रूप में सामान्यवार्तालाप के रूप में गद्य में कही गयी थी। भाषा इसकी यही थी क्योंकि उस समय समस्त प्राचीन विश्व में संस्कृत की व्यवहार भाषा थी। ईस्वी सन् से 3138 वर्ष पूर्व अर्थात् आज से 5139 वर्ष पूर्व यह प्रवचन किया गया था। दस दिन बाद ही सञ्जय ने धृतराष्ट्र को यह उपदेश सुनाया। अर्जुन के साथ साथ ही भगवान् व्यास ने और व्यास के प्रसाद से सञ्जय ने (10/75) सुना। इसके 90 वर्ष बाद व्यासने इसे पद्यरूप में महाभारत में ग्रथित किया जिसे अध्ययनकाल में वैशम्पायन आदि शिष्यों ने सुना। इसके पश्चात् सौति उग्रश्रवा ने शौनक के दीर्घसत्र में शौनकादि ऋषियों को सुनाया। इस प्रकार ईसा पर्वू 3048 वर्ष से अथवा आज से 5049 वर्ष पूर्व से गीता का यह रूप निरन्तर विद्यमान है।

गीता को कृष्ण ने धर्म मीमांसा का ग्रन्थ कहा है। धर्म संमूढ अर्जुन को धर्ममार्ग पर लगाने का उद्देश्य कृष्ण का था, धर्म के मूल तक जाने के लिये आत्मा, ब्रह्म, वर्णाश्रम, सत्त्वादिगुण, कर्म आदि का इसमें विवेचन है। इस सूत्र को भगवान् आद्यशंकराचार्य ने पकडा है– ''तं धर्मं भगवता यथोपदिष्टं वेदव्यास: सर्वज्ञो भगवान् गीताख्यै: सप्तभि: श्लोकशतै: उपनिबबन्ध'' (उपोद्घात) अपने इस विचार में उन्होंने अनुगीता के 'स हि धर्म: सुपर्याप्तो ब्रह्मण: पदवेदने' पद्यार्थ की (कृष्ण के कथन की) साक्ष्य दी है। वर्णाश्रमधर्म का पालक प्राणवान् व्यक्ति ही गीता के मर्म को समझ पाता है, इस धर्म के प्रति अश्रद्ध अथवा मुमूर्षु के लिये गीता नहीं है 'करिष्ये वचनं तव' जैसे संकल्प का सामर्थ्य न होने से। इति शम्

पीठाचार्य, वेदपुराणस्मृति शोधपीठ
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व पीठाध्यक्ष (धर्म संस्कृति पीठ)
ज.रा.रा.सं.वि., जयपुर

नवरात्रि और स्वास्थ्य

डॉ शिवदत्त शर्मा
बी.ए.एम.एस.

नवरात्री पर्व सनातन धर्म का एक ऐसा अनुष्ठान है जो मनुष्य को धार्मिक, मानसिक, आत्मिक, सांसारिक और शास्त्रीय लाभ तो प्रदान करते ही हैं साथ ही इस अनुष्ठान से हमारे शरीर पर भी चमत्कारिक प्रभाव होता है और हमारे स्वास्थ्य पर क्या असर होता है जिसका विवेचन हम इस आलेख में आगे करेगें।

नवरात्री पर्व वर्ष में दो बार आते हैं एक चैत्रीय नवरात्र और दूसरे शारदीय नवरात्र इस पर्व में साधक नो दिनों तक उपवास करते हैं सयंम नियम से रहते हैं अपने इष्ट के ध्यान में मन लगाए रहते हैं।

नवरात्री पर्व ऐसे समय मे आते हैं जब दो ऋतुओं का मिलन हो रहा होता है जो प्रातः और सायंकाल की तरह ही होता है जिस प्रकार हम इन दोनों कालो में भोजन, यात्रा, क्रीड़ा, शयन, मैथुनादि को निषेध करते हैं और प्रभु भजन एवं धार्मिक कार्यो में व्यतीत करते हैं उसी प्रकार इन दोनो ऋतुओं के मिलन के समय में भी नवरात्री के नो दिनों को व्यतीत करते हैं मेरे 45 वर्ष के चिकित्सीय जीवन का अनुभव है की जो इन नियमो से दूर रहते हैं वे अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाते हैं।

अब इसका कारण भी जान लीजिए- हमारे शरीर मे वात, पित्त, कफ, ये तीन तत्व पदार्थ होते हैं जिन्हें त्रिदोष भी कहा जाता है ये तीनो जब तक सन्तुलित मात्रा में रहते हैं तब तक तो हम स्वस्थ निरोग रहते हैं लेकिन ज्योंही इनमे किसी भी एक या दो धातु के घटने-बढ़ने का सिलसिला प्रारम्भ होता है इनका प्रकोप विभिन्न प्रकार के रोगों के रूप में दिखाई देने लगते हैं। ग्रीष्म ऋतु में हमारे शरीर मे एकत्रित पित्त और वर्षा ऋतु में एकत्रित वात और कफ दोनो के असंयमित होने पर ज्वर, जोड़ो में दर्द, श्वास, खांसी आदि से ग्रसित हो जाते हैं और डॉक्टर, वैद्यो के यहाँ रोगियों की भीड़ लग जाती है। इसी प्रकार चैत्र नवरात्रो से पूर्व शीतकाल में शरीर मे एकत्रित कफ और वात के प्रकोप से भी ज्वर खांसी, श्वास, बदन दर्द, मति-भ्रम और यदि वात के साथ पित्त प्रकोप भी हो तो चर्म रोग सिर-दर्द, वमन, पेट-दर्द अतिसार आदि रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

हमारे पुरातन ऋषिमुनियों ने इन तीनो धातुओं को नियंत्रित करने के लिए ही नवरात्रि व्रत का नियम बनाया है जो धार्मिक के साथ-साथ शास्त्रीय और आयुर्वेद सम्मत भी है इस व्रत के करने से जहां हमारे शरीर में ऋतुओं के प्रभाव और अनियमित खान-पान से एकत्रित वात-पित्त-कफ नियंत्रित

होते हैं वहीं हमें मानसिक शक्ति भी प्राप्त होती है जिस प्रकार मेडिटेशन करने से मस्तिष्क शान्त रहता है, क्रोध पर काबू रहता है, याददाश्त बढ़ती है, समस्या का समाधान तुरन्त कर लेते हैं, हाजिर जवाब बन जाते हैं, और बड़ी से बड़ी समस्या भी चुटकियों में हल कर लेते हैं वही प्रक्रिया नवरात्रि में नो दिनो तक प्रभु में ध्यान लगाने से होती है। एक अन्य बात और जो आज के आधुनिक वैज्ञानिक शोध करके पता लगा रहे हैं कि व्रत करने से कैंसर का खतरा 90 प्रतिशत तक समाप्त हो जाता है ऐसा क्यों होता है ये भी जान लीजिए हमारे शरीर मे हजारों कोशिकऐं प्रतिदिन बनती हैं और प्रतिदिन मरती भी हैं लेकिन शरीर के ही किसी स्थान विशेष की कोशिकाओं का बनना तो जारी रहे लेकिन समाप्त होना बंद हो जाए तो वहां इन कोशिकाओं का जमाव ही केंसर का रूप ग्रहण कर लेता हैं लेकिन जब हम व्रत करते हैं तो हमारा शरीर स्वयं से ही ऊर्जा ग्रहण करता है और ऐसे में शरीर की कोशिकाओं का क्षरण होना प्रारम्भ हो जाता है और अतिरिक्त कोशिकाएं एकत्रित नहीं हो पाती और हमारे शरीर का कैंसर से बचाव हो पाता है (परंतु ये बात वहीं लागू होती है जहाँ गुटका धूम्रपान अखाद्य पदार्थो का सेवन प्लास्टिक एल्युमिनियम के बर्तन अथवा एल्युमिनियम की फाइल में गर्म भोजन के प्रयोग से बच कर रहा जावे) इस बात का पता तो भारतीय आयुर्वेद मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व ही लगा लिया था इसीलिए तो व्रत की परंपरा सनातन हिन्दू धर्म मे रखी गई है और इसीलिए तांबा, पीतल और मिट्टी के बर्तन काम मे लिए जाते थे।

तो यही कारण है और धन्य वो हिन्दू धर्म जिसमे नवरात्रि जैसे व्रत अनुष्ठान के नियम बनाये गए।

जय भारत, जय सनातन।।

शशि नर्सिंग होम, मुरलीपुरा स्कीम,
जयपुर राज.।

वास्तुशास्त्रीय चिन्तन परम्परा – प्रासाद चिन्तन

(वास्तुविन्यास व मन्दिर वास्तु)

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा

वैदिक वाङ्मय भारतीय ज्ञान विज्ञान व समस्त कार्य व्यवहार का मूल है। वैदिक वाङ्मय में सर्वाधिक प्राचीन ऋग्वेद को माना गया है। इस वेद में सभी देवताओं का स्तवन व स्तवनादि से जुड़े मंत्रों का समावेश है। अनेकों स्थानों पर ऋग्वेद में 'वास्तोष्पति' नामक देवता का उल्लेख प्राप्त है और प्राय: गृहनिर्माण या गृहप्रवेश या इसी प्रकार के गृह से सम्बन्धित किसी भी कर्म के आरम्भ में इन वास्तोष्पति देवता के पूजन व यजन का वर्णन प्राप्त होता है सामान्य रूप से जिज्ञासा होती है कि इनकी उत्पत्ति व स्वरूप क्या है? इन्हीं 'वास्तोष्पति' देवता को 'वास्तुपुरुष' के नाम से भी जाना जाता है। इनकी उत्पत्ति विषयक जिज्ञासा के समाधान हेतु भी शास्त्रों में अनेक वर्णन प्राप्त होते है वास्तुविषयक ग्रन्थों में कई गाथाऐं किञ्चित अन्तर के साथ लिपिबद्ध है यथा विश्वकर्माप्रकाश में लिखा है कि त्रेतायुग के प्रारम्भ के उपरान्त एक विराट आकार का महाभूत उत्पन्न हुआ जिसने जल्दी ही ब्रह्माण्ड को आच्छादित किया और तब ब्रह्माजी के आदेश से देवताओं ने उसे अधोमुख कर उस पर अधिकार कर लिया, यथा वर्णित है–

पुरा त्रेतायुगे ह्यासीनमहाभूतं व्यवस्थितम्।
स्वप्यमानं शरीरेण, सकलं भुवनं तल:।
तं दृष्ट्वा विस्मयं देवा, गता: सेन्द्रा: भयावृता:।
ततस्ते भयमापन्ना, ब्रह्माणं शरणं ययु:।।
भूतभावन भूतेश महद्भयमुपस्थितम्।
क्व यास्याम: क्वगच्छामो वयं लोकपितामहा।।
मा कुर्वन्तु भयं देवा, विगृह्योप्तमहाबलम्।
निपात्याधोमुखं भूमौ, निर्विशंका भविष्यथ।।
ततस्तै: क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तं महाबलम्।
विनिक्षिप्तमधो वक्रं स्थितास्तत्रैव ते सुरा:।।

(विश्वकर्मा प्रकाश)

वास्तुशास्त्र के अन्य ग्रन्थों में मतान्तर भी प्राप्त होता है। मण्डन सूत्रधार ने स्वरचित ''वास्तुराज वल्लभ'' में वास्तुपुरुष की उत्पत्ति रुद्र व अन्धकासुर के मध्य युद्ध में भगवान पिनाकपाणि त्रिनेत्र के

स्वेदकणों से मानी है। इसी प्रकार महेश के स्वेद कणों से वास्तोष्पति की उत्पत्ति पुराणों में मत्स्यपुराण (अध्याय 252), विष्णुधर्मोत्तर पुराण (अध्याय 3/95) व अग्निपुराण में (अध्याय 40/01) वर्णित है। वास्तुराजवल्लभ में मण्डनसूत्रधार के वचन निम्नानुसार है–

संग्रामेऽन्धकरुद्रयोश्च पतितः स्वेदो महेशात् क्षितौ
तस्मात् भूतमभूच्च भीति जननं द्यावा पृथिव्योर्महत्।
तं देवैः सहसा विग्रह्य निहतं भूमावधोवक्त्रकं
देवानां वचनाच्च वास्तुपुरुषस्तेनैव पूज्यो बुधैः।।

(वास्तुराजवल्लभ)

भारतीय वाङ्मय में ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन है और इसमें वास्तु, स्थापत्य व शिल्प सम्बन्धी कई उल्लेख मिलते हैं वास्तुपूजन के अवसर पर वास्तुपुरुष देवता के आह्वान के विषय में प्राप्त विवरण इस मंत्र के रूप में मिलता है–

वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मानत्स्वावेशो अनमीवो भवानः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शंतो भव द्विपदेशं चतुष्पदे।। (ऋग्वेदमण्डल 7)

अर्थात् हे वास्तुदेवता, हम आपके पूर्ण निष्ठित उपासक है इसे आप सत्य जाने एवं हमारे द्वारा की गई स्तुतियों, प्रार्थनाओं को सुनकर हमें रोगमुक्त व प्रसन्न करें, तथा धन ऐश्वर्य से युक्त करें, साथ ही इस वास्तु में निवासित परिवारजनों व पशुओं का भी कल्याण व वृद्धि करें। संस्कृत वाङ्मय में वास्तुदेव को निर्माणस्थल का अधिष्ठाता माना जाता है। गृह का पालक व रक्षक भी स्वीकार किया है–

वास्तो गृहक्षेत्रस्य परिधिष्ठाता।
वास्तोष्पति गृहस्य पालयितृ देव।। (ऋ ग्वेद 7/54/41)

वैसे शास्त्रों में वास्तुपुरुष निर्माणस्थल के अधिष्ठाता के रूप में स्वीकृत होने से प्रत्येक शिल्पकार्य आरम्भ में वास्तुपूजन अनिवार्य है फिर भी जिन-जिन कर्मो के प्रारम्भ में अवश्य ही करणीय कर्म के रूप में वास्तुपूजन अनिवार्य है उनका भी नामोल्लेख शास्त्रों में वर्णित है और उन-उन कर्मो के प्रारम्भ में वास्तुपूजन करना ही चाहिये ऐसा नहीं करने पर हानि होती है विश्वकर्मा प्रकाश में उद्धृत है–

प्रासादे च प्रपायां च, जलोद्याने तथैवच।
यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो, मोहाद्वास्तु नरः प्रभो।।
अश्रियं मृत्युमाप्नोति, विघ्नस्तस्य पदे पदे।
वास्तुपूजामकुर्वाणो तवाहारो भविष्यति।।

इसी प्रकार का संकेत वास्तुराजवल्लभ नामक प्रसिद्ध वास्तुग्रन्थ में भी है कि यदि किसी व्यक्ति

द्वारा (आधुनिक समय में सामूहिक निर्माण में भी), देवालय निर्माण, भवन या प्रासाद निर्माण, तालाब व कूपादि खननारम्भ, उद्यान, बाग, बगीचारोपण अवसर, प्राचीन भवन के पुन: जीर्णोद्धार में, नगर व ग्रामादि बसाते समय प्रारम्भ में, यज्ञ के प्रारम्भ व समापन अवसर पर वास्तुपूजन अत्यन्त सावधानी व श्रद्धा के साथ करना चाहिये।

प्रसङ्गवश वास्तुपूजन देवालय में भी विहित है अत: यहाँ यह तथ्य भी सुविदित होता है कि देवालय निर्माणावसर पर वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा समय-समय पर स्वस्ति वाचन व पुण्यक आशीर्वाद ग्रहण भी करना चाहिये। भूमि के निर्माण के समय खनन, ताडन, घर्षणादि दोष शमन हेतु उक्त कार्य आवश्यक है क्योंकि सनातनी परम्परा में पञ्चमहाभूतों में से एक पृथ्वी है इसीलिए कहा भी जाता है कि–

माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:।

इसी अवधारणा के साथ शास्त्रों में निर्माणावसर के वे स्थल या पडाव जहाँ पर वास्तुदेव का पुण्यस्मरण अभीष्ट है वर्णित है वे इस प्रकार है प्रासाद मण्डन में इनको 'सप्तपुण्याहकर्म' की संज्ञा दी गई है और लिखा है–

कूर्मसंस्थापने द्वारे, पद्माख्यायां तु पौरुषे।
घटे ध्वजे प्रतिष्ठायां, एवं पुण्याहसप्तकम्।।

अर्थात् कूर्मसंस्थापन, द्वारस्थापन, पद्मानामकशिलास्थापना, प्रासादपुरुष की स्थापना व घट (कलशस्थापना), ध्वजस्थापन व मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा आदि कर्मावसरों को पुण्यप्रद कर्म मानना चाहिये। इसी प्रकार अन्यवास्तु ग्रन्थों में भी उल्लेखित है जो इस प्रकार से है–

कूर्मशिला तथाद्वारं, पद्मकं पुरुष: क्रमात्।
कलशोध्वज: प्रतिष्ठां च सप्तपुण्याहकानिच।।

इसी प्रकार का वर्णन वास्तुशास्त्रीय अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है जो इस प्रकार वर्णित है वास्तुमञ्जरी के प्रणेता आचार्य ने उद्धृत किया है–

कूर्मसंस्थापने द्वारे, पद्माख्यायां तु पौरुषे।
घटे ध्वजे प्रतिष्ठायां, एवं पुण्याहसप्तकम्।।

भारतीय कालगणना में मुख्य आधार सूर्य व चन्द्र है इनकी गति के आधार पर विभिन्न कालमान आश्रित है मुख्य रूप से कालमान नव प्रकार के माने गये है इनमें दैवमान भी प्रचलित रहा है व्यावहारिक प्रयोग सौर, सावन, नाक्षत्र व चान्द्र इन चार ही कालमानों का उपयोग है किन्तु सैद्धान्तिक रूप में नव प्रकार वाले सभी कालमानों का समावेश है दिन में कार्य व्यापार का संचालन व सम्पादन अधिक सुगमता से होता है। अत: देवताओं की प्रतिष्ठा (मन्दिरनिर्माणादि कार्य) सौम्यायन यानि देवताओं के दिन में सिद्धिप्रद मानी गई है यहाँ वास्तुशास्त्रीय प्रमाण भी है–

पूर्वोक्ता सप्तपुण्याहप्रतिष्ठासर्वसिद्धिदा।
रवौ सौम्यायने कुर्याद् देवानां स्थापनादिकम्।।

देवमूर्तियों की स्थापना हेतु देव मन्दिर का निर्माण भी अपेक्षित है। अत: देवालय निर्माण हेतु शास्त्र निर्दिष्ट तत्त्वों का निदर्शन व उनके द्वारा निर्देशित नियमों से आबद्ध यदि देवप्रासाद होता है तो वह अभीष्टफलदायी होता है प्रारम्भ में तो मन्दिर वास्तु भी साधारण ही रहा होगा किन्तु समय पाकर कलात्मकता की अभिवृद्धि के कारण इनका स्वरूप भी परिष्कृत व संवर्धित होता गया होगा।

ऋग्वेद के उपरान्त अग्निपुराण का एक सम्पूर्ण अध्याय ही मन्दिर वास्तु का सम्यक् निर्देशक रूप में लिखित है। शास्त्रों में एकतलीय मन्दिर के साथ-साथ विभिन्न शालीय मन्दिरों का भी वर्णन प्राप्त होता है। एकमंजिला मन्दिर भवन दस हस्त विस्तार व इससे द्विगुणित ऊंचाई तक वाले हो सकते हैं वर्गीकरण द्वारा इनको चार अलग-अलग नामों से जाना जाता है–

(1) शान्तिक देवप्रासाद
(2) पौष्टिक देवप्रासाद
(3) जयददेवप्रासाद
(4) अद्‌भुतदेवप्रासाद

यथोक्तम्–

त्रिचतुर्हस्तमारभ्य, नवदशहस्तविस्तृतम्।
तारे सम्पदशोत्सेधमध्यर्ध तत्त्रिपादकम्।।
द्विगुणं तु तदुत्सेधं, शान्तिकं पौष्टिकं भवेत्।
जयदं चाद्‌भुतं चैव, चतुर्धोदयमीरितम्।। (मयमतम्)

आकृति (मन्दिरों की) के अनुसार भी इनका स्वरूप चौकोर (समरस्त्र), वर्गाकार या आयताकार, अण्डाकार, षटकोणीय या अष्टकोणीय रूप में भी निर्मित किया जा सकता है मयमत में इसके लिये उल्लेख है–

चतुरं वृत्तमायामं, द्वयधवृत्तं षडमंकम्।
अष्टाश्रमाकृतिह्येषां, शिखरेऽपि तथैव च।। (मयमतम्)

देवालयों में प्रतिष्ठित किये जाने वाली मूर्तियों में देवता जिस प्रकार से पुरुष व स्त्री संज्ञा से है वैसे ही देवालयों की भी पुरुष व स्त्री संज्ञा उनके निर्मित आकार के अनुसार वर्णित है और शास्त्रों में यह निर्णय भी मिलता है कि स्त्रीदेव की प्रतिष्ठा स्त्रीसंज्ञक भवनों में व पुरुष देवताओं की प्रतिष्ठा पुरुषसंज्ञक भवनों (देवालयों) में ही होनी चाहिये।

वास्तुशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थमानसार में उक्त वर्णन इस प्रकार प्राप्त है–

समाश्रं समवृत्तं, यत्पुरुषं चेतीकथ्यते।
आयताकारधिष्ण्यं वा वनितेती प्रकीर्तितम्।।
पुंविमानं पुरुषं वनितायां वनितां क्षिपेत्।
शक्तिनां वनितां वापि, पुरु वासि च कल्पयेत्।। (मानसार)

यानि समकोणीय या वृत्ताकार भवन पुल्लिंग भवन माने जाते हैं वैसे ही आयताकार भवनों को स्त्रीलिंगवाची भवन मानकर उनमें तदनुरूप (लिङ्गसाधर्म्यानुसार) देवतामूर्तियों को प्रतिष्ठित करना चाहिये। विस्तार होने पर भारतीय मन्दिरों की वास्तुकला दो भागों में विभक्त हुई जिसे इनके प्रचलन स्थान के अनुसार उत्तरभारतीय वास्तुकला व दक्षिण भारतीय स्थापत्य कला के नाम से जानने लगे। उत्तरभारतीय स्थापत्य कला को नागरविधा व दक्षिणभारतीय वास्तुकला को द्राविडविधा के नाम से भी जाना जाता है। दोनों विधाओं का समन्वित स्वरूप 'बेसर शैली' के रूप में भी प्रकाश में आया। नागर विधा के प्रस्तारक आचार्य गर्ग, अत्रि, पराशर, वशिष्ठ व विश्वकर्मा माने गयें वही द्राविडविधा के प्रमुख प्रवर्तकों में ब्रह्मा, मय, त्वष्ट्रा, कश्यपादि माने जाने लगें।

मन्दिर निर्माण हेतु समाज को प्रेरणा हेतु शास्त्रों में लिखा है कि मन्दिर की भूमि पवित्र, शान्त व मनोरम वातावरण से युक्त हों, जहाँ मन्दिर का निर्माण करना हो वहाँ नजदीक ही जलाशय, तालाब व सुन्दर व सुगन्धित पुष्पों से सज्जित उद्यान व वाटिका होनी चाहिये।

सलिलोद्यानयुक्तेषु, कृते एवकृतकेषु च।
स्थानेष्वेतेषु सांनिध्युपगच्छन्ति देवता:।।

मन्दिरनिर्माण के द्वारा निर्माता (बनवाने वाले) को पुण्यलाभ होता है। मन्दिर निर्माण की सामग्री (मिट्टी, लकडी, पत्थर, लौह, चाँदी व स्वर्ण निर्मित) के अनुसार निर्माणकार को प्राप्त पुण्य में गुणितवृद्धि होती जाती है। विश्वकर्मा प्रकाश में इसका उल्लेख इस प्रकार है–

प्रासादे मृण्मये पुण्यं, मयैतत्काथितं पुरा।
तस्माद्दशगुणं पुण्यं, कृते शैलमये भवेत्।
ततो दशगुणं लोहे, ताम्रेशतगुणं तत:।
सहस्त्रगुणितं रौप्ये, तस्माद्रौक्मे सहस्त्रभम्।।
अनन्तं फलमाप्नोति, रत्नचित्रे मनोहरे।
या भूमि: शस्यते गेहे, सा प्रासाद विधौ तथा।।

गृहवास्तु व मन्दिरवास्तु में वास्तुपूजा में पद विन्यास क्रम का ही अन्तर है वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में वास्तु के प्रमाण से विभिन्न मन्दिरों का वर्णन किया गया है विश्वकर्मा प्रकाश में ही 20 प्रकार के मन्दिर है–

मेरु: मन्दर: कैलाश:, विमानच्छदनन्दना:।
समुद्ग पद्म गरुड़, नन्दिवर्धन कुञ्जरा:।
गृहराजो वृषो हंस:, सर्वतोभद्रकोघट:।
सिंहो वृत्तश्चतुष्कोण: षोडशाष्टश्रितौतथा।।
इत्येते विंशति: प्रोक्ता:, प्रासादा संज्ञया मता।
यथोक्ता...........।।

अर्थात्–

मेरु, मन्दर, कैलाश, विमानच्छद, नन्दन, समुद्ग, पद्म, गरुड, नन्दिवर्धन, कुञ्जर, गृहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोडशाश्रि, अष्टाश्रि इस प्रकार 20 प्रकार के मन्दिर प्रासाद माने गये हैं। इसी प्रकार का वर्णन 14वीं शताब्दी के प्राकृत भाषाविद् 'ठक्कुर फेरु' ने भी अपने ग्रन्थ में (वास्तुसार नाम से प्रसिद्ध) लिखा है उनके अनुसार मन्दिरों का वर्गीकरण करने पर 25 प्रकार होते हैं जो इस प्रकार है–

केसरिअ सव्वभद्दो सुनंदणो नन्दिसालु नंदीसो।
तह मंदिरु सिखिच्छो अमिअब्भवु हेमवन्तो अ।।
हिमकूडू कइलासो पहविजयो इन्दनीलु महनीलो।
भूधरु अ रतनकूडो वइडुज्जो पडमरागो अ।।
वज्जंगो मुउडुज्जलु अइरावउ, रायहंसो गरुडो अ।
वसहो अ तह य मेरु ए ए पणवीस पासाया।। (ठक्कुर फेरु)

प्राकृत भाषा में निबद्ध वास्तुसार ग्रन्थ में 'ठक्कुर फेरु' ने प्रासादों के 25 वर्गीकरण कर उपर्युक्तानुसार नाम दिये हैं। प्रासादों में उनके आकार के अनुसार ही पीठ का उदय होता है। गर्भगृह में मूर्तियों की प्रतिष्ठा की जाती है। मन्दिर शैली के अनुसार शिखरों का निर्माण होता है। इस प्रकार वास्तुशास्त्रीय चिन्तनपरम्परा में वास्तु विन्यास व मन्दिरवास्तु का उल्लेख वर्णित है।

सन्दर्भग्रन्थावली–

1.	विश्वकर्माप्रकाश	2.	मत्स्यपुराण
3.	विष्णुधर्मोत्तरपुराण	4.	अग्निपुराण
5.	वास्तुराजवल्लभ	6.	ऋग्वेद
7.	प्रासादमण्डनम्	8.	अपराजितपृच्छा
9.	वास्तुमंजरी	10.	मयमतम्
11.	मानसार	12.	वास्तुसार

WELLNESS GASTRONOMY AND SUPRA-INDIVIDUAL CONNECTIONS OF NOURISHMENT

Tibor KÖKÉNY

Abstract: *The paper is oriented on the area of "wellness gastronomy" with the focus to show the parallels between incorporative style towards food consumption, in family abuse, and while consuming natural sources. The basic psychological approach is objectification and dominancy towards weak and vulnerable beings and environment. When a living being became an object in front of our eyes it can be punished, slaved, or devoured any time. The tactless and aggressive behaviour of the Western societies based on this logic that is an expansive patriarchal style of behaviour that is going to enslave and possess whatever is on the way. Today economical and environmental disasters can be driven back to this attitude.*

Keywords: *Wellness gastronomy, eating patterns, psychological character, incorporation, abuse, consumption.*

1. INTRODUCTION

1.1 Wellness nutrition characteristic

Wellness nutrition and wellness gastronomy is committed to further harmonious composition of food, nutritional balance, and harmony of flavours, colours and ethical sourcing. For the same vein, it is also in the book "Foundations of Wellness" (Reger-Nash et al., 2015) indicated the Wellness optimal eating plan, emphasizing the main food groups. It also contains the principles of safe food and shopping recommendations, and what types to avoid. Wellness nutrition helps in the prevention of acute and chronic diseases and potentiates not only physical, but also mental development, it cannot only strengthen your mental stability, but also increase resistance to infection and increase work efficiency. The basic task is to ensure optimal intake of energy and nutrients in the form of macro- and microelements, as appropriate to the age, health and lifestyle.

For the exact definition of Wellness nutrition will be defined (Skvaril, 2015) :

1. Nutrition food quality from multiple perspectives, which will have dominant influence on the health and performance of boarders. It has a new impact on the human psyche. Today we use the total practical division of food and food seasonings. However, this current distribution contains a number of significant errors. For example, the foods include sugar and the seasonings include mushrooms. In fact, it should be the opposite. Therefore it will be necessary to repair the system or introduce other, which would allow simplified orientation in the quality of food.
2. Structure of food cooking and culinary adjustments in terms of not only the sensory appeal of these dishes, but now also in terms of the impact on the health, vitality and mental boarders.

The result should be simple rules for combining ingredients in the food and especially the rules for the different ways of flavouring.

3. Combination of repasts in each dish (minimum: appetizer, main dish, curvature, drinks) from the perspective of the impact of combinations of food on health, exercise and mental well-being boarders.
4. Manners of dining in terms of individual support and influence on psyche of boarder.
5. Wellness Nutrition, which will be realized in wellness gastronomy, then we will be able to integrate into a lifestyle that leads to diet in order to enhance the quality of life to a level that we can consider as wellness status. It will therefore be even define the concept of living and quality of life from the perspective and requirements to achieve wellness status.

Wellness gastronomy in the context with vegetarian or vegan nourishment is a popular new way of diet in EU and Western societies. In this paper we are focusing on to show the psychological and social aspects of nourishment specially the symbolic connections of eating meat and happenings in the family, society and environment. We would like to find some connections that show the same base for acting destructively in these different levels of research.

The health aspect of vegetarian nutrition is an individual and even more a physiological level that is thoroughly researched by medicine. In this paper the individual level is not discussed but we stress more the supra individual level. The pollution of environment and the problem of global warming, furthermore the overconsumption of the Western societies' population threatens to incorporation of the Globe (Sabate 2001).

If we want to deal with the problem on a more sophisticated sociological-philosophical level the recent researches on family abuse justified this approach (Herman 1997). From this point of view the second generation of feminism looked for and found connections between terror in society, politics, and in family abuse and the nourishment (Adams 1999).

1.2 Character and its formation due to socialisation and social background

Psychological characters are formed by the parents with the help of social values. These conglomerates of attitudes, behaviours, ideas and values are built up through the birth. We say that we suck these values with the mother milk. Even more: "We are going to be what we eat." In this way thought Sigmund Freud (1962), who differentiated the human development according to activity of erogenous zones like oral, anal, phallic, and after a latent phase genital.

Freud's approach, especially in the first two phases contains the nourishment as a gross factor and the social behaviour that is connected to it. So he formed 5 types for the oral character of the adult:

- Incorporative
- Clinging
- Biting or cannibal organization
- Spitting out
- Extruding or excluding.

Freud's concept shows the early pattern of behaviour of nourishment connected to the behaviour of adulthood.

It is similar to the social characters of Eric Fromm. Fromm (1976) postulates the same as Freud: the character is formed according to the social background. His characters are as follows:

- Incorporative dependent type
- Incorporative aggressive type
- Owner or proprietor type
- Marketing type
- Humanistic type.

And finally one more scientist who reduces the types and queues up three possibilities. Angyal (1965) discussed the characters from the viewpoint of the connection to environment. He distinguished the characters like:

- Heteronomy
- Autonomy
- Homonomy.

These are the subduing or dependent, the dominant, and the balanced characters. Each can be recognized by its behaviour towards the social and natural environment.

2 OBJECTIVES

The main goal of the study is to show parallels between nourishment and human behaviour.

3 METHODS

Qualitative Content Analysis of documented research studies transformed in subject selection in the form of reference reduction combined with empirical praxis. The paper main goal is exploring and discussing from the view of possibilities of psychological approaches showed a special connection between input and character.

4 RESULTS AND DISCUSSION

Input can be a gross factor like solid food but also subtle information that comes from the social field. The latter depends how the child is basically nourished. Vegetarian ideas rooted in the historical times. In Egypt or in the Hindustani civilization nourishment was vegetarian. They respected life as it is. So was with the great ancient Greek philosophers like Socrates, Platon, or Pythagoras (Guthrie 1979). Skvaril (2015) states that if a state of wellness be evaluated from the perspective of yoga then it is good to declare parameters, which should be achieved in this way. The author argues that the way to a state of wellness is almost completely disappeared requirement for internal change that according to ancient teachings seems to be a key condition to achieve a state of wellness, "bliss harmony and performance potential". The author also confronts Yoga Vedanta philosophy that understands the concept of bliss and happiness. From that it can be guessed that the permanent bliss

achieves stronger buying a car or an attractive holiday or a salary increase or improvement of cleanliness of the environment and about certainly not merely a massage or the sauna (Skvaril, 2015).

“Wellness” state and “Sattva” state as synonyms

The history is closest to the concept of “Wellness” the mentioned concept of “Sattva”. Sattvic state in itself joins two opposites: high performance and harmony. “Sattva” is a Sanskrit word that defines the first of three “guns”: Sattva, Rajas, and Tamas. According to this theory everything in the universe and human life is formed on the basis of these the above-mentioned three fundamental principles (qualities, characteristics). Sattva-gun is characterized of the enlightenment, purity, knowledge, balance and harmony. Rajas-gun is a substance or energy of motion, creation, action and development. Tamas-gun can be described as low energy or energy decay, ignorance, destruction, stagnation, disease and congestion. In terms of compatibility with the concept of wellness can Guns defined as follows : (analyzed according texts of Skvaril, 2015 and Skarnitzl, 1994)

- Sattva - a state of deep inner peace and at the same time the fullness of power that allows, if necessary to move in an instant from deep calm and relaxation to the maximum short-term and long-term performance. After execution performance can get back into the state of peace very quickly and balance.
- Rajas - the great state of internal restlessness but also a sense of energy, which typically allow only short-term performance and thus short-term satisfaction. Inner restlessness creates then not putting full of bliss.
- Tamas - a state of rest due to a lack of energy that even with big incentive not allow any energy consuming activity. That is the state of darkness or inertia. 33

Sattva diet

According to the classical record *Bhagavad Gita* the Sattva diet “presents nice heart and mind, which stabilizes the body and gives a long life, strength and health of mind and body. It promotes happiness and love for all creatures.” Sattva food is any natural food that has a calming effect that is easily digested and if you eat it in moderation. These foods should be fresh, harvested at the appropriate time, a reasonably long storage, free of harmful chemicals and are free of unhealthy foods or their ingredients. Ayurveda (“Knowledge of life” - the traditional Indian system of medicine) is considered sattva diet as the most suitable for supporting strength, vitality, powerful mind and a good mood, lasting youthfulness and longevity. Sattva food opens consciousness, psyche is fed into a state of harmony. Sattva food: fresh, juicy, light, oily, nutritious and sweet-tasting foods. They are: wheat, rice, barley, milk, honey, brown sugar, green vegetables, leafy vegetables, fruits, nuts and seeds. Sattva diet contributes to achieving high-quality mental state and the desired positive personality qualities – attentive, kind, peaceful, comprehensive, balanced, warm, intelligent, independent, empathetic, positive, compassionate, loyal, tolerant, generous and calm.

Rajas diet

According to the classical to the "Bhagavad Gita" rajas diet is the one who "brings misfortune, misery and disease". It consists primarily of pungent, sour and salty tastes, and what is too hot, crisp and dry, causing a burning sensation. " Rajas food is too spicy, heavy and contains foods that have a heating effect, such as: spicy spices, chilli, garlic, onion, paprika, ginger, tomatoes, cheese, ripe eggplant, some beans, meat, fish, seafood , eggs, alcohol, tea, coffee, cigarettes, sugary foods, beverages with citric acid and carbonic potatoes and similar salted junk foods, fried and baked foods. People attracted to this type of food are physical or emotional imbalanced. In a healthy rate of moderate tendencies are "Rajas" needed for survival, as maintaining the energy potential in the exercise. Highly developed rajas features such as sensuality, motivation, ambition, imagination, wrath, jealousy, mania, egoism and impulsivity lead to a character that is typical of unreliability, stubbornness, greed, anxiety and the need for constant distraction. "Rajas personality" is hyperactive and can remain for longer balanced.

Tamas diet

According to the classical to the "Bhagavad Gita" the "Tamas" diet is one that "is an old and corrupt, which is tasteless and has an unpleasant odour, also residues and foods that do not look good." Tamas food is hard, cold, dry, tasteless, rotten. From a modern gastronomy here is sorted frozen semi-finished products and food prepared in a microwave oven. For tamas food are considered especially canned and preserved, processed, semi-heated, leftover food, overcooked food, strong alcoholic beverages (spirits), strong medicines, meat. "Tamas" diet reinforces in personality pessimism, ignorance, greed, laziness, doubts, criminal tendencies, lack of human understanding, feelings of inferiority.

The above allocation of food is not completely uniformed. For this reason, these criteria should be understood as approximate. Objective evaluation for wellness gastronomy is necessary to build on the current scientific knowledge about the quality of food, diet and health promoting knowledge about the impact of food and dishes on the vitality and power simultaneously to induce the state of well-being, peace and harmony boarder. Wellness gastronomy has very important findings in the field of psychology, nutrition and health psychology. Wellness diet should promote improved quality of life. It can be assumed that the actual wellness gastronomy can achieve wellness secure state, but that is only one of the important conditions to achieve it. It thus appears that for measurable and long-term primarily the result of the influence of wellness gastronomy is necessary nutrition wellness inclusion in the system of diet-style spa, which then no longer ensure the attainment and maintenance of quality of life that could be considered a state of wellness. For this reason it is essential definitions of "quality of life" and "lifestyle" to allow conscious lifestyle management, which ensures achieving wellness status (Skvaril, 2015).

So call "Traditional" nourishment is meat based diet since the meat is included in most of the dishes. This is due to the social welfare that is always a sign in every era that luxury consumption is the social ideal. Social ideals are luxury, consumption, and pronto. All these stand for satisfying

human needs for material comfort. These ideals need matter and gross energy. That ends in consumption the environment, wars, and aggression. To have enough power needs oil and mineral potential, and water, etc. This is the competition for the matter on this globe regardless of the consequences (Lorenz 1974).

Supra-individual analogies

To find subtle analogies between nourishment and social values is not an easy case. Since majority of the Western population consume meat based diet it is a natural tendency to have resistance to understand this topic.

Livestock

Eating meat and aggression can be analysed as the way of handling animals. To understand this connection we should observe the changes from a life of an animal to an object of food.

Livestock production is hidden from our eyes. Animals are stuffed in minimized spaces of meadows, hutches, trucks to end up in the slaughter houses. They exist as properties. Their suffering is for the joy of human's satisfaction. But a consumer in the supermarket does not think about the story of a sausage or a bacon. There is a gap between the mutton and the jumping lamb. This process is well built to be hidden for lulling human emotions. Children are deeply hurt when their Easter bunny is served for the Sunday lunch (Akers 1993).

If we do not know something we are not responsible for. And if the mass do something it is not necessary to think over its righteousness. So are general psychological self-defensive mechanisms to maintain our self-esteem. Eating meat means incorporating lives that gives the satisfactory feeling to have control over nature and natural sources. It can be called the sense of being the Creator.

Family abuse

We can find the same analogy in family abuse. Though it seems to be far but psychological dynamics are similar. Aggression against women and children are "popular" topic for modern psychological and sociological research. It seems that abuse is the main cause of certain syndromes like borderline disorder, schizophrenia, antisocial behaviour, etc. Victims are always the weak and vulnerable. Aggressor is mainly the gross and dominant. So are the social roles in the patriarchal society: men suppress women and children (Herman 1997).

The process is the next. Make the weak your property and slave. Let her be emotionally and materially dependent. Thank that you can externalize your aggression. Your anger punishes your property if it disturbs you. It can be light verbal punishment or deadly brutal slain.

The main psychological method is objectification and aggression behind the curtains. Rules are in the hands of men, regulations are too. It is again the position of the Creator (Adams 1999).

Environmental consciousness

Meat eating as a larger area stands against the environment. It demands 3-10 times more energy to get the same amount of nutrition from meat than from plant origin. To be able to present these resources we consume the environment. Main cause of deforestation is meat industry. So is

with water consumption. If the water used by meat industry were not subsidized, a hamburger would cost 35 US$ instead of less than a buck (Halweil and Nierenberg 2004).

We could enumerate more data but the essence is that meat based diet is not sustainable even for the Western world let alone the whole Globe. We consume the environment through consumption of meat products. We pollute the environment through the consumption of meat, and we abuse the natural resources through consumption material goods (Renner 2004).

But all these destruction are hidden from our eyes since a long chain of production hides all the sufferings and abuses of the Earth and its inhabitants. We again do not care and behave as rulers. Psychological essence of aggression is objectification of a living entity or ecological system. The outer object as already our property can be treated as we wish. So is our projection of anger onto the possessed “object”. Final act is incorporation or devour as an act of consumption.

This method is justified by law against animals. The same method is used in family abuse though it is not justified. It is the same way of treating other nations in the name of justice for getting their natural sources either by war or by tricky contracts. And this is how we approach the nature to consume and control it (Adams 1999).

5 CONCLUSIONS

An important sector of “Self-Transformation” is “Wellness Nutrition”. This term was defined in the Czech Republic in the 1st National Conference of “Wellness gastronomy” in KromYíž in 2015. The definition declares that the Wellness diet should be in terms of a positive impact on human health is always freshly prepared food in organic quality and a significant proportion should have a raw diet (fruits, nuts, vegetables, milk, muesli, etc.). Only fresh diet represents properly enzymes that are catalysts of biochemical processes in the human body (bone structure, muscles, and haematopoiesis). In contrast, the semi-heated meals, meals care, foods with chemical additives have a negative impact on human health and cause mental and physical weakness and fatigue. This is how a person feels after the mental and physical are very closely related to its diet (Krejcí, Hošek, et al., in press)

Starting from eating patterns and forming of the human character we quickly approached till the consumption as the source of human happiness. This is an attitude of an oral character that cannot stand equality. For this character things should be under control, emotions should not be mutual, weak and vulnerable beings must be ruled. The patriarchal society gives such possibilities that destruction of animals, family members, other cultures, and environment is accepted, even more: celebrated. Today’s heroes are blessed with cunning and aggressive logic that devour the diversity of manifoldness. As Erich Fromm (1976. p. 37.) says “...the wish to devour the entire world, the consumer is the eternal suckling, crying out for its bottle.” and “I am what I have and what I consume.”

Fortunately ecological development is at its borders since pollution and natural disasters cost more and more. This will awaken businessmen and politicians to create new ways of approach to nature and to renew our ideals of consumption. We should find new ways of living and new ideals that the future generation can have a good example for surviving on this planet.

REFERENCES

Adams, C.J. (1999): *The Sexual Politics of Meat: a Feminist-Vegetarian Critical Theory.* New York: Continuum International Publishing Group.

Akers, K. (1993) *Vegetarian Sourcebook.* Denver: Vegetarian Press.

Angyal, A. (1965) *Neurosis and Treatment. A Holistic Theory*. New York: Wiley.

Freud, S. (1962) *Three Essays on the Theory of Sexuality*. New York: Basic Books.

Fromm, E. (1976) *To Have or to Be?* New York: Harper and Row.

Guthrie, W. K. (1979) *A History of Geek Philosophy - Earlier Presocratics and the Pythagoreans.* Cambridge University Press.

Halweil, B., Nierenberg, D. (2004). Let's See What We Eat. In: *The State of the World.*

New York: Worldwatch Institute. pp. 94-127.

Krejcí, M., Hošek, V., et al. (in press) Wellness v živote moderního cloveka. Prague: Grada.

Lorenz, K. (1974) *Civilized Man's Eight Deadly Sins*. New York: Harcourt Brace Jovanovich.

Olah, A., Kallai, K., Vadnai, Z. (1985) *Reformkonyha*. Budapest: Mezogazdasagi Kiado.

Reger-Nash, B., Smith,M., Juckett, G (2015) *Foundations of Wellness*. Champaign: Human Kinetics.

Renner, M. (2004) Towards a Less Consuming Economy. In: *The State of the World.* New York: Worldwatch Institute. pp. 128-158.

Sabate J. (Ed.) (2001) Vegetarian Nutririon. New York: CRC Press.

Skarnitzl, R. (1994) *Poznáváme své já*. Praha: Melantrich.

Skvaril, J. *Wellness gastronomie*. Available on : http://www.wellnessgastronomie.eu/

CONTACTS

Tibor Kökény, MA.
University of Debrecen
Debrecen
Hungary
E-mail: kokenyt@gmail.com

त्रैमासिक रिपोर्ट (विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर)

(जून, जुलाई, अगस्त)

कार्यक्रम	शिविर	कार्यशाला	प्रकाशन	व्याख्यान-प्रस्तोता-दिनांक-विषय
कार्यशाला		(1)अभिलेखीय परिरक्षय एवं संरक्षण पर त्रिदिवसीय कार्यशाला का आयोजन	(1) काश्मीरगौरवं का सम्पादन (2) विश्वगुरुदीप मनुस्मति का सम्पादन	(1) प्रो. अन्नत शर्मा - 5-6-19 - पितामह भीष्म (2) प्रो. अन्नत शर्मा - 9-6-19 - पितामह भीष्म (3) प्रो. अन्नत शर्मा - 16-6-19 - भीष्म के उपदेश युक्त पर्व (4) प्रो. अन्नत शर्मा - 23-6-19 - पितामह भीष्म (प्रश्नोतरि) (5) प्रो. अन्नत शर्मा - 30-6-19 - पितामह भीष्म (6) प्रो. अन्नत शर्मा - 7-7-19 - पितामह भीष्म और परसुराम युद्ध की व्याख्या (7) प्रो. अन्नत शर्मा - 14-7-19 - पितामह भीष्म (8) प्रो. अन्नत शर्मा - 28-7-19 - ब्रह्मा के दिन (9) प्रो. अन्नत शर्मा - 11-8-19 - द्रोण- भीष्म की आयु का वर्णन (10) प्रो. अन्नत शर्मा - 18-8-19 (11) प्रो. अन्नत शर्मा - 25-8-19

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, सोडाला, जयपुर

एवं

राजस्थान राज्य अभिलेखागार के संयुक्त तत्वावध्यान में

12 जून से 14 जून 2019 तक आयोजित त्रिदिवसीय कार्यशाला की

प्रमुख झलकियाँ

पं. मधुसूदन ओझा के 153वें जन्मदिवस पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी व सम्मान समारोह

योगा इन डेली लाईफ फाउण्डेशन

एक परिचय

'योगा इन डेली लाइफ फाउण्डेशन' एक अन्ताराष्ट्रिय संस्था है, जिसकी स्थापना सन् 2002 ईस्वी में महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी महाराज के कर कमलों से हुई। इस संस्था का मुख्यालय, नई दिल्ली में स्थित है। इस संस्था के द्वारा विविध आश्रमों का संचालन किया जा रहा है। जो भारतीय संस्कृति-धर्म-ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर सक्रिय है। शोध के माध्यम से इनके संवर्धन में संस्था का अभूतपूर्व योगदान रहा है।

आश्रम परम्परा भारतीय संस्कृति के पल्लवन में अतीत से ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही है तथा इस संस्था के अध्यक्ष महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी की आचार्यपरम्परा जो गुरुशिष्यपरम्परा के रूप में सतत् प्रवाहित होती रही, का उल्लेखनीय योगदान रहा है। संस्था के प्रगतिपथ पर उन्मुख गतिविधियों से इन आचार्यों का अवदान वस्तुतः चिरस्मरणीय रहेगा।

(क) आचार्य परम्परा–

1) परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी
2) परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी
3) महाप्रभु श्री दीपनारायण जी
4) परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी
5) सार्वभौम जगद्गुरु महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी
6) महामण्लेश्वर स्वामी श्री ज्ञानेश्वर पुरी

(ख) आश्रम परम्परा

1) श्री देवपुरी जी आश्रम, महरौली, नई दिल्ली
2) श्री देवपुरी जी आश्रम, कैलाश, सीकर (राज.)
3) श्री देवपुरी जी आश्रम, शिवबाग, बड़ी खाटू, जिला नागौर (राज.)
4) ओ३म् आश्रम, जाडन, जिला पाली (राज.)
5) धर्मसम्राट् स्वामी माधवानन्द आश्रम, नीपल, जिला पाली (राज.)
6) विश्वगुरु दीप आश्रम, जयपुर

विश्वगुरुदीप आश्रम, शोध संस्थान, जयपुर

एक परिचय

योगा इन डेली लाइफ फाउण्डेशन द्वारा संस्थापित एवं संचालित विश्वगुरुदीप आश्रम जयपुर में दिनांक दिसम्बर, 2016 को महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी जी के प्रयत्नों से तथा महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी के आशीर्वाद से विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर की स्थापना की गयी। यह शोध संस्थान जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर से सम्बद्ध है तथा भारतीय पुराविद्याओं के शोध हेतु सक्रिय है। शोध संस्थान में निम्नांकित शोधपीठ स्थापित है जिनमें निरन्तर शोधकार्य एवं व्याख्यानमालाएँ आयोजित की जाती रही हैं–

(1) वेदपुराणस्मृति शोधपीठ
(2) भाषामीमांसा एवं शास्त्र शोधपीठ
(3) धर्मदर्शनसंस्कृति शोधपीठ
(4) संस्कृत प्रचार-प्रसार शोधपीठ
(5) योगविज्ञानशोधपीठ

Printed by : Ideal Computer Centre, Jaipur • 9829028926